IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

भारतीय संस्कृति में तंत्रयोग की अवधारणा एवं भ्रांतियां

बैकुंठ बिहारी[1] and डॉ. सुषमा रानी[2]

[1]शोधार्थी, संस्कृत विभाग

[2] सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय, राजस्थान

सारांश

मनुष्य की अमूल्य संपदा उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के 'कृ' करणे धातु से निष्पन्न है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं प्रकृति' (मूल स्थिति), 'संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृति' अर्थात अपरिपक्व वस्तु या धातु आदि को परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृ त(सु-संस्कृत, सस्कारित अथवा शोधित) हो जाती है और जब यह बिगड़ जाता है तो विकृत हो जाता है। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी रहा है। यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज रहन-सहन आचार-विचार नवीन अनुसन्धान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है और सभ्य बनता है, सभ्यता' कहलाती है जोकि भौतिक क्षेत्र की प्रगति से सम्बंधित है। जबकि संस्कृति से मानसिक

संदर्भ

[1]. निरंजनानंद, स्वामी: तंत्र, योग एवं मंत्र, योग विद्या: अंक-3 मई, पृ.सं. 32.

[2]. निरंजनानंद, स्वामी: तंत्र, योग एवं मंत्र, योग विद्या, अक-3 मई, पृ.स. 33.

[3]. सिंह, रामहर्ष, योग एव यौगिक चिकित्सा पृ.सं.64.

[4]. सिह, रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा पृसं 64.

[5]. मालतीमाधव, 5/1.

[6]. मुद्राराक्षस, 1/2

[7]. कर्पूरमन्जरी, 2/22-24.

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in